इकाई 16 भारतीय संघवाद में टकराव एवं सहयोग के मुद्दे

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 संघवाद और केन्द्रीयकरण

- 16.2.1 केन्द्रीयकरण
- 16.2.2 परिवर्तित परिस्थिति

16.3 राज्यपाल की भूमिका

- 16.3.1 राज्यपाल की नियुक्ति
- 16.3.2 राज्यपाल की विवेकाधिकार शक्तियाँ
- 16.3.3 राष्ट्रपति के विचार हेतु विधेयक को सुरक्षित रखना

16.4 आपातकालीन शक्तियों का प्रयोग

- 16.4.1 धारा 356 के अंतर्गत आपातकालीन शक्तियाँ
- 16.4.2 राष्ट्रपति शासन पर विवाद

16.5 वित्तीय संबंध

- 16.5.1 कर लगाने की शक्तियाँ
- 16.5.2 अनुदान विषय
- 16.5.3 आर्थिक योजना

16.6 इलेक्ट्रोनिक मीडिया का इस्तेमाल

16.7 स्वायत्तता तथा सहयोग की माँग

- 16.7.1 स्वायत्तता की माँग
- 16.7.2 सहयोग की दिशा में किए गए कार्य
- 16.7.3 सरकारिया आयोग
- 16.7.4 अन्तर-राज्य कौंसिल

16.8 सारांश

16.9 शब्दावली

16.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

16.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

16.0 उद्देश्य

इस इकाई में तनाव तथा सहयोग के उन क्षेत्रों का विवरण किया गया है जिनकी भारत में उत्पत्ति संवैधानिक व्यवस्थाओं और पचास वर्ष से अधिक संघीय व्यवस्था के कार्य करने के कारण हुई है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप जान सकेंगे :

- उन कारणों तथा परिस्थिति की जिससे केन्द्र-राज्य रिश्तों में टकराव-सहयोग उत्पन्न हुआ है;

- केन्द्र-राज्यों के बीच के तनावों, उनकी प्रकृति तथा आशयों के क्षेत्रों की पहचान के विषय में;
- सुधार के लिए दिए सुझाव एवं अनुमोदनों या केन्द्र-राज्यों के बीच टकराव व तनाव को कम करने के लिए होने वाले परिवर्तनों के बारे में; तथा
- भारतीय संघवाद की कार्य पद्धति में उत्पन्न होने वाले रुझानों के आकलन के विषय में।

16.1 प्रस्तावना

आप पहले से ही इकाई 4 में पढ़ चुके हैं कि भारतीय संघीय व्यवस्था का विवरण एक "सहयोगीय संघवाद" के रूप में किया गया है। वास्तव में यह एक मजबूत संघ तथा महत्त्वपूर्ण एकात्मक प्रवृत्तियों वाला संघ था। इसकी संरचना इस प्रकार से की गई कि केन्द्रीय सरकार की सर्वोच्चता की स्थापना के साथ कुछ निश्चित क्षेत्रों में राज्यों को भी स्वायत्तता उपलब्ध हो। संविधान की सातवीं सूची के अंतर्गत वैधानिक प्रशासनिक एवं वित्तीय क्षेत्रों में शक्तियों के वितरण की योजना को इस प्रकार से प्रभावकारी बनाया गया था जिससे कि केन्द्रीय सरकार राज्यों से अधिक शक्तिशाली बन सके। इसके अतिरिक्त अवशिष्ट शक्तियाँ भी केन्द्रीय सरकार का प्रदान की गईं।

आपातकालीन व्यवस्थाओं के नाम पर केन्द्र को विधायी एवं कार्यवाही शक्तियों का भरपूर प्रयोग करने के लिए अथाह शक्तियाँ प्रदान की गई जिससे कि वास्तव में संघीय व्यवस्था एक एकात्मक व्यवस्था में परिवर्तित हो जाए। संविधान निर्माण के समय (राष्ट्रीय एकता तथा विकास के हित में) शक्तियों के केन्द्रीयकरण को आवश्यक समझा गया। कुछ समय पश्चात् विशेषकर 1960 के दशक में भारतीय संघवाद की प्रकृति के विषय में सवालिया निशान लगने लगे। हम इस इकाई में इन सभी विषयों का उनकी पृष्ठभूमि, आशय तथा भविष्य की प्रवृत्तियों के संदर्भ में उल्लेख करेंगे।

16.2 संघवाद और केन्द्रीयकरण

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जिस राजनीतिक प्रबुद्ध वर्ग ने सत्ता को प्राप्त किया वह शक्तिशाली केन्द्र का पक्षधर था क्योंकि वह न केवल केन्द्रीय नीतियों को लागू करना चाहता था अपितु यह राष्ट्रीय प्रबुद्ध वर्ग अपनी सुनिश्चित सर्वोच्चता को भी बनाए रखना चाहता था। इसलिए संविधान द्वारा उपलब्ध कराए गए केन्द्रीकृत संघ को इस वर्ग ने अपर्याप्त माना या पाया और केन्द्र के शासकों ने उचित या अनुचित साधनों का इस्तेमाल करते हुए केन्द्र की शक्तियों में और वृद्धि की। केन्द्र और लगभग सभी राज्यों में एक दल की सरकार होने के कारण की शक्ति में वृद्धि करने में और मदद की।

16.2.1 केन्द्रीयकरण

केन्द्र में केन्द्रीयकरण के लिए मुख्य औचित्य यह दिया गया कि विभाजन हो जाने के कारण देश की एकता एवं अखण्डता को बनाए रखने के लिए एक मज़बूत केन्द्र अपरिहार्य था। नए स्वतंत्र देश के संतुलित तथा योजनाबद्ध विकास के लिए भी केन्द्रीयकृत प्रयासों की आवश्यकता थी। परन्तु व्यवहार में केन्द्रीयकरण के दो लक्ष्य थे, प्रथम जितने भी राज्यों में संभव हो उनमें प्रमुख दल को सत्ता में बनाए रखना और दूसरे दल के अन्दर नेतृत्व की सत्ता को सुदृढ़ करना। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए राज्यपालों के पदों तथा आपातकालीन व्यवस्थाओं सहित संवैधानिक एवं अतिरिक्त संवैधानिक तरीकों का इस्तेमाल किया गया। दल के मुख्यमंत्रियों के माध्यम से राज्यों को नियंत्रित एवं संचालित

करने के लिए केन्द्र ने एक पैतृक की भूमिका को विकसित किया। दल की आंतरिक समस्याओं को हल करने के लिए कभी-कभी धारा 356 के अंतर्गत राष्ट्रपति शासन लागू करने जैसी असाधारण शक्तियों का भी इस्तेमाल किया गया। एक दल के शासन के दौरान केन्द्र-राज्यों के संबंध कांग्रेस दल की राज्य शाखाओं तथा केन्द्रीय नेतृत्व के बीच के रिश्तों की अभिव्यक्ति मात्र थे। न तो कभी संघीय ढाँचे को सक्रिय होने का अवसर प्राप्त हुआ और न ही राज्यों ने अपनी संवैधानिक स्वायत्तता का सुख भोगा।

कुल मिलाकर ऐसे स्वतंत्रता आंदोलन की पृष्ठभूमि जो स्वयं में एक एकीकृत ताकत था, विभाजन की त्रासदी, एकदलीय प्रभुत्व, मज़बूत करिश्माई नेतृत्व, राष्ट्रीय योजना एवं राष्ट्रीय राजनीतिक प्रबुद्ध वर्ग की अवधारणा जैसी परिस्थितियों में संविधान का निर्माण केन्द्रीकृत शक्ति के रूप में हुआ। इसको लगभग एक एकीकृत रूप में लागू किया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि सभी क्षेत्रों में केन्द्र की सर्वोच्चता स्थापित हो गई। राज्यों की परियोजनाओं को अनुमति प्रदान करने में यह पूर्णरूपेण स्वतंत्र था। यह राज्यों की कानून-व्यवस्था का निर्देशन करता। इसने राज्यों के विधायकों को कानून बनाने से रोकना प्रारंभ कर दिया। अपनी इच्छानुसार ही राज्यों को अनुदान प्रदान करता। यहाँ तक कि यह मुख्यमंत्रियों को थोंपने लगा। कई टीकाकारों का मानना था कि संघीय प्रणाली के प्रभाव को एकात्मक सरकार में परिवर्तित किया गया और राज्य केंद्रीय सरकार सहायक एजेन्सी के रूप में कार्य करने लगे।

16.2.2 परिवर्तित परिस्थिति

केन्द्र के प्रभुत्व की प्राथमिकता की व्याख्या एवं केन्द्रीयकरण की प्रक्रिया तब तक किसी मुश्किल या विरोध के बग़ैर कार्य करते रहे जब तक केन्द्र एवं लगभग सभी राज्यों में एक दल का शासन कायम रहा। इसका कारण यह था कि कांग्रेस पर ऐसे नेताओं था नियंत्रण का जिनका स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने के कारण राष्ट्रीय नेताओं के रूप में सम्मान किया जाता था। जनमानस के बीच यह अभिलाषा भी थी कि उनके विकास की आशाएँ पूरी की जाएँगी। किन्तु 1960 के दशक के मध्य से स्थिति में परिवर्तन होना प्रारंभ हुआ। करिश्माई नेतागण राजनीतिक परिदृश्य से विलुप्त होने लगे। जनता की अभिलाषाओं को पूरा करने वाली विकास योजना की असफलता स्पष्ट होने लगी। विभिन्न राजनीतिक अभिलाषाओं तथा परस्पर-विरोधी आर्थिक हितों के साथ एक शक्तिशाली मध्यम वर्ग का उद्भव हुआ। लोकतंत्र तथा कुछ सीमा तक भूमि सुधार लागू तथा कृषि का विकास होने के परिणामस्वरूप एक ऐसे धनी कृषक वर्ग का भी उद्भव हुआ जो राज्य के स्तर पर अपने हितों को सुरक्षित रखने का इच्छुक था। इस सभी की परिणति दलीय व्यवस्था के परिवर्तन के रूप में हुई। कांग्रेस ने एक राष्ट्रीय आंदोलन की अपनी पहचान को खोना प्रारंभ कर दिया। इसके अतिरिक्त तथाकथित राष्ट्रीय दलों में गुटबाजी उभरने लगी जिसके कारण क्षेत्रीय राजनीतिक दलों का उद्भव हुआ। 1967 के आम चुनाव में कांग्रेस पार्टी की स्थिति न केवल केन्द्र में कमज़ोर पड़ी बल्कि उसको मात्र आठ राज्यों में बहुमत प्राप्त हुआ। इस राजनीतिक स्थिति ने केन्द्र-राज्यों के रिश्तों में एक नई बहस को जन्म दिया। राज्यों की ग़ैर-कांग्रेस सरकारें केन्द्र के निर्देशों को आँखें बन्दकर अनुसरण करने को तैयार न थीं। केरल, पश्चिम बंगाल तथा तमिलनाडू जैसे प्रदेशों की सरकारों ने राज्य स्वायत्तता के सिद्धांत को जीवित बनाए रखने पर बल दिया। कई प्रदेशों में ग़ैर-कांग्रेस दलों की विजय ने कांग्रेस के अन्दर गुटबाजी को और तीव्र कर दिया और इसलिए केन्द्रीय नेतृत्व के विरुद्ध प्रश्नात्मक चिह्न लगाए जाने लगे।

प्रारंभ में केन्द्र-राज्यों के रिश्तों पर बहस सीमित थी। 1972 तक कांग्रेस दल तथा केन्द्रीय सरकार ने पुन: अपनी सर्वोच्चता को स्थापित कर लिया। हालाँकि फिर भी स्थिति 1967 से पूर्व की न बन सकी। अब केन्द्रीयकरण की प्रक्रिया और कठोर हो गई। केन्द्र सरकार के राज्यों में हस्तक्षेप करने

के व्यवहार में वृद्धि हुई अपितु व्यक्तिवाद को बढ़ावा मिला। 1979 के बाद से सत्ता में आने वाले दलों में परिवर्तन तथा केन्द्र स्तर पर संयुक्त सरकार के सत्ता में आने से केन्द्र-राज्य संबंधों पर नई बहस एवं प्रक्रियाओं का प्रारंभ हुआ। लेकिन सामान्यत: चुनौतियों एवं नवीन परिवर्तनों के बावजूद केन्द्रीय सरकारों ने केन्द्र की प्रधानता के विचार, राज्यों के मामलों में अपने हस्तक्षेप के अधिकार, राज्यपालों के कार्यालयों के दुरुपयोग तथा राष्ट्रपति शासन को थोंपने को जारी रखा।

इस प्रकार राज्य के अधिकार क्षेत्र में केन्द्र द्वारा हस्तक्षेप करने की एक सामान्य प्रवृत्ति बनी रही। केन्द्रीयकरण एवं केन्द्र सरकार के हस्तक्षेप करने की प्रवृत्ति ने केन्द्र-राज्य रिश्तों के क्षेत्र में गंभीर तनाव को जन्म दिया। ये महत्त्वपूर्ण है :

1) राज्यपाल की भूमिका

2) राष्ट्रपति शासन को लागू करना

3) राष्ट्रपति के विचार हेतु अधिनियम को सुरक्षित रखना

4) वित्तीय शक्तियों का बँटवारा

5) इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का इस्तेमाल

16.3 राज्यपाल की भूमिका

राज्यपाल को राज्य के संवैधानिक ढाँचे का स्तम्भ माना गया है क्योंकि केन्द्र-राज्य के संबंधों में उसकी मुख्य भूमिका है। केन्द्र के प्रतिनिधि के रूप में और केन्द्र-राज्यों के बीच समन्वय बनाए रखने के लिए संविधान द्वारा केन्द्र को राज्यपाल नियुक्त करने की शक्ति प्रदान की गई है। लेकिन व्यवहार में राज्यपाल का पद एवं भूमिका केन्द्र-राज्य के बीच तनाव उत्पन्न करने का पर्याप्त कारण बन चुका है।

16.3.1 राज्यपाल की नियुक्ति

केन्द्र सरकार तथा राज्यों के बीच तनाव का पहला कारण केंद्र द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति केन्द्र के प्रतिनिधि के रूप में करना है। वास्तव में केन्द्र का शासक दल राज्य में अपनी सत्ता बनाए रखने के लिए राज्यपाल के पद का इस्तेमाल एक औज़ार के रूप में करता है। इसका परिणाम यह हुआ है जैसा कि सौली सौरबजी कहते हैं "यह कहना कोई अतिशयोक्ति न होगा कि किसी अन्य संस्था का संवैधानिक पद का पतन या दुरुपयोग नहीं हुआ है जितना कि राज्यपाल के पद का।" यह सुनिश्चित करने के लिए कि राज्यपाल केन्द्र सरकार के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करे, इसके लिए राज्य के मुख्यमंत्री से सलाहकार राज्यपाल की नियुक्ति करने की प्रवृत्ति की अवहेलना की जाती रही है। आजकल इस परम्परा का अनुसरण करने का मुख्यमंत्री से सलाह कर राज्य के राज्यपाल की नियुक्ति की जाए हेतु दबाव बनाया जाने लगा है। इसके बावजूद भी राज्यपाल की नियुक्ति के लिए केन्द्र सरकार न तो किसी सिद्धांत का अनुसरण करती है और न ही इसके लिए कोई सुनिश्चित मापदण्ड है।

सरकारिया आयोग ने अपनी सिफारिशों में सुझाव दिया है कि जिस व्यक्ति को राज्यपाल नियुक्त किया जाए उसे निम्न मापदण्ड को पूरा करना चाहिए। उसे जीवन में कुछ विशिष्टता प्राप्त हो, वह व्यक्ति राज्य के बाहर का हो, वह राज्य की क्षेत्रीय राजनीति में समीप से न संबंधित हो और वह ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिसने सामान्यत: राजनीति में विशेष भूमिका अदा न की हो।

सरकारिया आयोग की रपट आ जाने के बावजूद भी राज्यपालों की नियुक्तियाँ शासक दल के सक्रिय राजनीतिज्ञों और मुख्यमंत्रियों से सलाह किए बग़ैर किया जाना जारी है।

16.3.2 राज्यपाल की विवेकाधिकार शक्तियाँ

एक संवैधानिक प्रधान के रूप जहाँ राज्यपाल कुछ सामान्य कार्यों का निर्वाह करता है वहीं वह कुछ विवेकाधिकार शक्तियों का भी प्रयोग करता है। इनमें से कुछ का इस्तेमाल वह परामर्श के द्वारा करता है और कुछ का आवश्यक आशय होता है। जहाँ तक विवेकाधिकार शक्तियों का प्रश्न है वे तीन मामलों में अति महत्त्वपूर्ण हैं। प्रथम मुख्यमंत्री की नियुक्ति से उस समय से संबंधित है जबकि किसी एक दल या फिर दलों के किसी एक गठबंधन को चुनाव में स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हुआ हो। यह प्रश्न मुख्यमंत्री के द्वारा बहुमत का समर्थन खो देने, या फिर किसी अन्य कारण से उसे पद से बर्खास्त करने से जुड़ा है। दूसरा मामला धारा 356 के अंतर्गत राष्ट्रपति को उसकी संतुष्टि के लिए ऐसी स्थिति की रपट भेजना है जिसके कारण राज्य सरकार संविधान की व्यवस्थाओं के अनुरूप कार्य नहीं कर सकती और इसलिए वह राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश करता है। राष्ट्रपति शासन लागू करने की घोषणा स्वयं में केन्द्र एवं राज्य सरकारों के बीच गंभीर तनाव उत्पन्न कर देती है। इस इकाई के भाग 16.4 में इसका अलग से विवरण किया गया है। इससे संबंधित तीसरी शक्ति विधेयकों को राष्ट्रपति के विचाराधीन हेतु सुरक्षित रखना है।

16.3.3 राष्ट्रपति के विचाराधीन हेतु विधेयक को सुरक्षित रखना

संविधान की धारा 200 द्वारा व्यवस्था की गई है कि राज्यपाल राष्ट्रपति के विचाराधीन हेतु राज्य विधायिका द्वारा पारित कुछ निश्चित विधेयकों को सुरक्षित रख सकता है। राष्ट्रपति इस पर अपनी संतुति दे सकता है या फिर इसको अपनी टिप्पणियों के साथ राज्यपाल को राज्य विधायिका द्वारा पुन: विचारार्थ के लिए भेज सकता है। लेकिन यदि राज्य विधायिका द्वारा इस विधेयक पुन: पारित कर दिया जाता है तब भी राष्ट्रपति इस पर अपनी संतुति देने के लिए बाध्य नहीं है।

इस व्यवस्था का मुख्य लक्ष्य यह है कि केन्द्र राष्ट्रीय हित में विधेयक का अवलोकन कर सके। लेकिन राज्यपाल और केन्द्रीय सरकार इनके माध्यम से इस संवैधानिक व्यवस्था का इस्तेमाल स्वार्थी हितों को पूरा करने के लिए करती रही है। विरोधी दलों द्वारा शासित राज्य समय-समय पर इन व्यवस्थाओं के दुरुपयोग विरुद्ध आवाज अक्सर वहाँ पर होते रहे हैं जहाँ राज्य मंत्रीमण्डल की सलाह के विरुद्ध राज्यपाल किसी विधेयक को सुरक्षित रखते हैं और इस संदर्भ में यह समझा जाता है कि ऐसा केन्द्रीय सरकार के निर्देश पर किया जा रहा है। सरकारिया आयोग को दिए गए स्मरण पत्र में भारतीय जनता पार्टी ने आरोप लगाया कि राज्य सरकारों के लिए मुश्किलें पैदा करने हेतु विधेयकों को राष्ट्रपति के विचाराधीन के लिए सुरक्षित रखा जाता है। सरकारिया आयोग की प्रश्नावली के उत्तर में पश्चिम बंगाल की सरकार ने बताया कि धारा 200 तथा 201 को या तो समाप्त कर दिया जाए या फिर संविधान को स्पष्ट करना चाहिए कि राज्यपाल अपनी विवेकाधिकार शक्ति का इस्तेमाल न करते हुए वह केवल राज्यमंत्री परिषद् की सलाह पर कार्यवाही करेगा। 1983 में श्रीनगर में हुए विरोधी दलों के सम्मेलन में माँग की गई कि विधायिकाओं को ऐसे विषयों पर कानून बनाने की शक्तियाँ प्रदान की जानी चाहिए कि जिनका निर्वाह उनको संवैधानिक रूप में करने से है और इनपर राष्ट्रपति की सहमति नहीं ली जानी चाहिए। हाल के वर्षों में क्षेत्रीय दलों द्वारा महत्त्व प्राप्त करने तथा केन्द्रीय सरकार के गठन एवं उसके जारी रखने में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होने के कारण राज्यपाल इस शक्ति का इस्तेमाल व्यापक रूप से नहीं कर रहे हैं। फिर भी केन्द्र-राज्य के रिश्तों में यह प्रश्न एक विवाद का विषय बना हुआ है।

बोध प्रश्न 1

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों की जाँच इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से करें।

1) उन कारकों का विवरण करें जिनके कारण 1967 के चुनावों के बाद केन्द्र-राज्य रिश्तों में नई बहस का प्रारंभ हुआ।

.....

.....

.....

.....

.....

2) केन्द्र और राज्यों के बीच तनाव के क्षेत्र में राज्यपाल की भूमिका की विवेचना करें।

.....

.....

.....

.....

.....

16.4 आपातकालीन शक्तियों का प्रयोग

हम पहले से ही पढ़ चुके हैं कि संविधान में ऐसी तीन प्रकार की आपातकालीन स्थितियों की व्यवस्था की गई है जिनकी राष्ट्रपति घोषणा कर सकता है। व्यवहार में इसका अभिप्राय केन्द्रीय सरकार की शक्तियाँ हैं। आप यह भी पढ़ चुके हैं कि किसी भी प्रकार आपातकालीन घोषणा राज्यों की शक्तियों को प्रभावति करती है। व्यवहार में अभी तक वित्तीय संकट आपातकालीन घोषणा नहीं की गई है। बाह्य ख़तरों (1962 तथा 1975) के कारण दो बार राष्ट्रीय आपातकालीन स्थिति की घोषणा की गई और आंतरिक कानून-व्यवस्था के कारण इसकी घोषणा (1975) एक बार की गई। विदेशी आक्रमण के कारण की गई आपातकालीन घोषणा पर कोई विवाद नहीं उठा क्योंकि यह राष्ट्रीय सुरक्षा से संबंधित थी लेकिन आंतरिक आपातकालीन घोषणा ने गंभीर विवाद को जन्म दिया क्योंकि एक तो यह देश में कुल मिलाकर लोकतंत्र के कार्य करने और दूसरे यह केन्द्र-राज्यों के रिश्तों से संबंधित थी। केन्द्र-राज्यों के बीच तनाव का मुख्य कारण यह था कि आपातकालीन स्थिति में धारा 356 के अंतर्गत केन्द्र सरकार को यह शक्ति प्राप्त हो गई कि वह किसी भी राज्य सरकार को राज्य में संवैधानिक मशीनरी के असफल होने का आधार मानकर बर्खास्त कर सकती थी।

16.4.1 धारा 356 के अंतर्गत आपातकालीन शक्तियाँ

आप पहले ही पढ़ चुके हैं कि आपातकालीन घोषणा का अभिप्राय है कि राष्ट्रपति को धारा 356 के अंतर्गत राज्यपाल या अन्य किसी दूसरी शक्ति से संबंधित राज्य सरकार की सभी शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं। इसलिए इस आपातकालीन घोषणा को लोकप्रिय रूप में "राष्ट्रपति शासन" कहा जाता है। धारा 356 से केन्द्रीय सरकार को राज्य सरकारों के कार्यों में हस्तक्षेप करने की व्यापक शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं। इसलिए कहा गया है कि राज्यों में राष्ट्रपति शासन को ऐसी गम्भीर स्थिति में लागू किया जाता है जैसे कि जीवन बचाने हेतु अन्तिम उपायों का इस्तेमाल किया जाए। फिर भी व्यवहार में जितनी बार इस व्यवस्था का प्रयोग किया गया उससे केन्द्र-राज्यों के रिश्तों में अधिकतर विवाद उत्पन्न हुआ है। अस्थिरता एवं राष्ट्रीय हित के अलावा इस व्यवस्था का प्रयोग निम्न प्रकार से किया गया है –

अ) विधान सभा में बहुमत होने के बावजूद भी राज्य सरकारों को बर्खास्त करना;

ब) पक्षपात के आधार पर विधान सभाओं को निरस्त या भंग करना;

स) चुनावी परिणाम निर्णायक न होने की स्थिति में विरोधी दल को सरकार बनाने का अवसर प्रदान न करना;

द) विधानसभा के अंदर भावी विभाजन का अनुमान कर मंत्रीमण्डल के त्यागपत्र देने की स्थिति में विरोधी दलों को सरकार गठन का अवसर देने से इंकार करना;

ध) विधानसभा के अंदर मंत्रीमण्डल की पराजय के बावजूद भी विरोधी पक्ष को सरकार न बनाने देना।

धारा 356 के अंतर्गत शक्तियों के इस्तेमाल को अधिकतर टीकाकारों एवं टिप्पणीकर्त्ताओं और राज्यों ने अनुचित कहा है।

16.4.2 राष्ट्रपति शासन पर विवाद

सरकारिया आयोग ने धारा 356 के लगातार किए गए दुरुपयोग की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए बताया है कि 1951 से 1987 तक 75 बार ऐसे अवसर आए जबकि राष्ट्रपति शासन को राज्यों पर लागू किया गया। इनमें 26 अवसर ऐसे थे जबकि इसको लागू करना आवश्यक था, लेकिन 18 मामलों में धारा 356 का इस्तेमाल पूर्णरूपेण राजनीतिक उद्देश्यों के लिए दुरुपयोग के रूप में किया गया। इस प्रकार संविधान की इस शक्ति का प्रयोग इसकी संवैधानिक स्थिति से मेल नहीं खाता। जैसा कि 1953 में बी०आर० अम्बेडकर ने राज्यसभा में 'पेपसू' में राष्ट्रपति शासन थोंपने के विषय में ठीक ही कहा था कि, "लोगों के संदेह का आधार वैधानिक है क्योंकि संपूर्ण भारत में सरकार अपने दल का शासन बनाए रखने के लिए संविधान का बलात्कार है।" संविधान की इस धारा का प्रयोग किस प्रकार ग़ैर-गंभीर तरीके से किया गया है, इसको 1977 में जनता पार्टी के केन्द्र की सत्ता में आने पर 9 राज्यों में कांग्रेस की सरकार को बर्खास्त कर दिए जाने से देखा जा सकता है। 1980 में श्रीमती गाँधी के सत्ता में वापस आने पर जनता पार्टी द्वारा शासित नौ राज्यों की सरकारों को बर्खास्त किया। 1980 के दशक में धारा 356 का इस्तेमाल इतनी बार हुआ जिससे कि ग़ैर-कांग्रेस (आई०) राज्य सरकारों के प्रति केन्द्र सरकार का असहनीय दृष्टिकोण प्रतीत हुआ। पंजाब में राष्ट्रपति शासन लगभग पाँच वर्षों तक (मई 1987 - फरवरी 1992) लगातार जारी रहा। परिणामस्वरूप धारा 356 संविधान की सबसे अधिक दुरुपयोग एवं आलोचित होने वाली धारा बन गई। संविधान के 44वें संशोधन अधिनियम में सुरक्षा प्रावधान किए जाने के बावजूद भी इसका

दुरुपयोग जारी है और जिससे केन्द्र-राज्य रिश्तों में कड़वाहट एवं गंभीर तनाव उत्पन्न हुआ है। 11 मार्च, 1994 को उच्चतम न्यायालय ने बोमाई मामले में धारा 356 के लागू तथा प्रयोग करने पर एक महत्त्वपूर्ण निर्णय दिया। दिसम्बर 1992 में मध्यप्रदेश, राजस्थान तथा हिमाचलप्रदेश की भाजपा सरकारों की बर्खास्तगी को उच्चतम न्यायालय ने सर्वसम्मति से उचित ठहराया क्योंकि उनके द्वारा किए गए ग़ैर धर्म-निरपेक्ष कार्य संविधान धर्म-निरपेक्ष संविधान के समरूप नहीं थे। लेकिन संविधान के समरूप नहीं थे। लेकिन नागालैण्ड (1998), कर्नाटक (1998) तथा मेघालय (1991) केन्द्र द्वारा प्रयोग की गई धारा 356 को उच्चतम न्यायालय के बहुसंख्यक न्यायधीशों ने असंवैधानिक माना।

बोमई मामले में संविधान की इस धारा की पूर्ववर्ती परिभाषाओं से गुणात्मक परिवर्तन करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने बहुमत से निर्वाचित राज्य सरकारों तथा राज्य विधान सभाओं के कार्यों के विरुद्ध की जाने वाली केन्द्र की कार्यवाहियों के लिए नवीन एवं लागू करने योग्य मापदण्डों का निर्धारण किया। इस निर्णयानुसार, "धारा 356 के अंतर्गत की जाने वाली राष्ट्रपति की घोषणा को आवश्यक रूप से एक प्रतिबंधित शक्ति समझा जाना चाहिए, इस धारा के अंतर्गत की गई कार्यवाही न्यायिक समीक्षा के अधीन आती है। राष्ट्रपति की संतुष्टि हेतु, जो कि आत्मनिष्ठ रूप से आवश्यक है, का आधार वस्तुगत होना चाहिए और जिसकी जाँच-पड़ताल अदालत द्वारा की जा सकती है। विधानसभा भंग करने जैसी कोई भी प्रतिगामी कार्यवाही न की जाए। ऐसी कार्यवाही करने की अनुमति तभी दी जा सकती जब इस घोषणा का अनुमोदन संसद के दोनों सदनों द्वारा कर दिया जाए और केन्द्र सरकार अधिक से अधिक इस अनुमति की प्राप्ति तक राज्य विधानसभा का स्थगन रख सकती है। उचित मामलों में संसद के अनुमोदन के बावजूद भी अदालत यथास्थिति को बहाल कर सकती है।'' इस प्रकार उच्चतम न्यायालय के इस निर्णय ने राष्ट्रपति शासन की घोषणा करने की शक्तियों पर महत्त्वपूर्ण प्रतिबंध लागू किए। इस निर्णय से राष्ट्रपति को भी कुछ शक्ति प्राप्त हुई। उदाहरण के लिए अक्टूबर 1997 में उत्तरप्रदेश के मामले में और फिर सितम्बर 1998 में बिहार के मामले में अपनी शक्ति का इस्तेमाल करते हुए राष्ट्रपति के० आर० नारायणन ने मंत्रिमण्डल के पास अपने निर्णय पर पुन:विचार करने के लिए वापस भेजा। यह आशा की जाती है कि उच्चतम न्यायालय के निर्णय तथा राष्ट्रपति नारायणन द्वारा मंत्रिमंडल की सिफारिशों पर पुन:विचारार्थ वापस भेजने जैसी दोनों कार्यवाहियों से अपने स्वार्थी उद्देश्यों के लिए धारा 356 के अधीन शक्तियों का केन्द्र सरकार द्वारा दुरुपयोग करने की प्रवृत्ति पर तर्कसंगत रोक लग सकेगी।

बोध प्रश्न 2

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों की जाँच इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से करें।

1) केन्द्र सरकार ने धारा 356 के अंतर्गत प्रदत्त शक्तियों का दुरुपयोग कैसे किया?

.....

.....

.....

.....

.....

2) राज्यों में राष्ट्रपति शासन की घोषणा से संबंधित शक्तियों के दुरुपयोग के विरुद्ध किन सुरक्षा उपायों का सुझाव दिया गया है?

.....

.....

.....

.....

.....

16.5 वित्तीय संबंध

भारतीय संघीय राजनीति में वित्तीय शक्तियों का प्रश्न केन्द्र-राज्य संबंधों में एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा है। अधिक वित्तीय स्वायत्तता की राज्यों की माँग अब बहस का एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न बन चुकी है। इस तनाव का कारण है, (अ) कर की तुलनात्मक शक्तियाँ, (ब) वैधानिक बनाम भेदभाव पूर्ण अनुदान और (स) आर्थिक परियोजना।

16.5.1 कर लगाने की शक्तियाँ

राज्यों की अपेक्षा केन्द्र के राजस्व साधन कहीं अधिक व्यापक एवं विस्तृत हैं। घाटे की वित्तीय व्यवस्था, विदेशी सहायता के रूप में विशाल निधि सहायता और देश के आन्तरिक धन बाज़ारों से प्राप्त होने वाले कर्जों के माध्यम से उत्पन्न किए गए विशाल संसाधनों पर केन्द्र का आधिपत्य है। कर की अवशिष्ट शक्तियाँ भी केन्द्र सरकार के अधीन हैं। इसके अतिरिक्त आपातस्थिति में अतिरिक्त धन संचित करने के लिए करों के ऊपर अधिभार लगाने का अधिकार संविधान ने केन्द्र को दिया है। व्यवहार में आमदनी-कर के ढाँचे पर अधिभार लगाना एक स्थायी विशिष्टता हो गई है। कर-व्यवस्था की दूसरी कमज़ोरी कॉरपोरेट कर लगाना है जिसके कारण राज्यों को नुकसान उठाना पड़ता है। यह लगातार बढ़ता जाता है और पूर्णरूपेण से केन्द्र के अधिकार क्षेत्र में आता है। राज्यों के राजस्व तथा उनके खर्च में अंतर बढ़ रहा है। निश्चय ही इसका एक बड़ा कारण राज्यों द्वारा उन स्रोतों को सक्रिय न कर पाना है जिनको वे कर सकते हैं और कुछ खर्चों को झूठी लोकप्रियता प्राप्त करने में खर्च किया जाता है। इसका कारण केन्द्र पर कुछ अधिक निर्भर बने रहना भी है। इसलिए राज्यों को केन्द्र की सहायता पर निर्भर रहना पड़ता है।

16.5.2 अनुदान विषय

केन्द्र से राज्यों को धन के चार तरीके हैं : (1) आमदनी पर केन्द्र के करों में अनिवार्य हिस्सेदारी; (2) केन्द्र के आबकारी शुल्कों में अनुज्ञात्मक हिस्सेदारी, (3) केन्द्र के कुछ शुल्कों तथा करों का राज्यों को पूर्णरूपेण आवंटन; (4) अनुदान एवं ऋण के रूप में राज्यों को वित्तीय सहायता की व्यवस्था। प्रत्येक पाँच वर्ष में या जब भी भारत के राष्ट्रपति की इच्छा हो धारा 280 तथा 281 की व्यवस्थानुसार राज्यों को कुछ निश्चित संसाधनों में हिस्सेदारी तथा संसाधनों के पूर्ण रूप से आवंटित करने हेतु वैधानिक वित्तीय आयोग का गठन किया जाता है। वित्तीय आयोग की व्यवस्था भारत सरकार तथा राज्य सरकारों के वित्त को विनियमित समन्वित तथा एकीकृत करने के लिए

की गई है। प्रारंभ में वित्तीय आयोग का कार्य केन्द्र से राज्यों को सभी वित्तीय मामलों को हस्तांतरित करना था। लेकिन धीरे-धीरे योजना आयोग भी इस कार्य को सम्पन्न करने लगा और अब यह केन्द्र से राज्यों को संसाधनों के हस्तांतरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करने लगा है। परन्तु योजना आयोग पूर्णत: एक केन्द्रीय संस्था है और राजनीतिक प्रभाव में रहता है, इसलिए राज्य अनुदानों के आवंटन में भेदभाव को महसूस करते हैं। इसके अलावा केन्द्र द्वारा आर्थिक अनुदान दिए जाने की व्यवस्था पूर्णत: राजनीतिक है और इसका हस्तांतरण उसका अपना विवेकाधिकार होने के कारण केन्द्र अधिकतर समय इसका आवंटन विवादपूर्ण तरीके से करता रहा है।

केन्द्र धारा 281 के अंतर्गत राज्यों को आर्थिक अनुदान, अपने विवेकाधिकार द्वारा तैयार की गई योजनाओं, प्राकृतिक आपदाओं या विषमताओं आदि को दूर करने के लिए प्रदान करता है। यह एक आम धारणा है कि विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा शासित राज्यों के बीच केन्द्र भेदभाव करता है। एच०ए० घनी का मानना है कि प्राकृतिक आपदाओं से प्रभावित राज्यों को दी जाने वाली केन्द्रीय राहत सहायता का गहराई से अवलोकन करने पर स्पष्ट होता है कि इस संदर्भ में सुनिश्चित मापदण्डों का पालन नहीं किया जाता। बाढ़, सूखा आदि से हुए नुकसान का अनुमान करने वाले केन्द्रीय दल राजनीति से ग्रस्त होने के कारण अस्थायी एवं असावधानी पूर्ण तरीके से इनका अनुमान करते हैं। इसलिए राज्यों ने केन्द्र की विवेकाधिकार रूप में भारी भरकम वित्तीय शक्तियों के विरुद्ध गहरी आपत्ति उठाई है। उस राज्य के विरुद्ध जो केन्द्र के विरोध पक्ष का हो इन शक्तियों में अंतर्निहित खतरे का राजनीतिक इस्तेमाल एक हथियार के रूप में केन्द्र कर सकता है। राज्य अधिक से अधिक संसाधनों का वैधानिक हस्तांतरण चाहते हैं जिससे कि विवेकाधिकार अनुदानों के प्रदान की करने की प्रवृत्ति में कमी की जा सके।

16.5.3 आर्थिक योजना

सामान्यत: यह माना जाता है कि भारत में योजना की प्रक्रिया ने राजनीतिक व्यवस्था को आगे बढ़ाया जिसने केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति को और अधिक मज़बूत किया। ऐसा इसलिए हुआ कि जहाँ एक ओर विकास के संसाधनों पर केन्द्र का नियंत्रण था वहीं केन्द्रीकृत योजना ढाँचे की प्रमुखता बनी रही। आर० के० हेगड़े का कहना है कि उद्योगों तथा आर्थिक योजना के क्षेत्र में राज्य की क्षीण शक्ति का भयंकर एवं भारी हानिकारक प्रभाव हुआ है। उदाहरण के तौर पर संविधान में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि उद्योग अनिवार्यत: राज्य का विषय है। केन्द्र द्वारा केवल उन्हीं उद्योगों का विनियमीकरण किया जाएगा। जिनकी संसद सार्वजनिक हित में घोषणा करे और ऐसे उद्योग ही केन्द्र के अधीन बने रहेंगे। लेकिन किसी भी प्रकार संविधान संशोधन किए बग़ैर वास्तव में उद्योगों को केन्द्र के विषय के रूप में परिवर्तित कर दिया गया है। मूल्य की दृष्टि में 90 प्रतिशत से अधिक संगठित उद्योग केन्द्र के अधीन आते हैं। व्यवहार में करने की आड़ में बहुत से अवसरों पर नए उद्योगों की स्थापना में अड़चने उत्पन्न की। यह भी आरोप है कि राष्ट्रीय योजना के नाम पर केन्द्र राजनीतिक कारणों से राज्य की दूरगामी एवं महत्त्वपूर्ण परियोजनाओं की स्थापना में अत्यधिक देरी करता है। ठीक इसके विपरीत केन्द्र राज्यों के ऊपर ऐसी योजनाओं को थोंपता है जिनको राज्य सरकारें विद्यमान राज्य की परिस्थितियों के लिए अनुपयोगी समझकर उनके प्रति कोई विशेष उत्साह नहीं दिखाती। इस और अन्य कारणों से अक्टूबर 1983 में विरोधी दलों के सम्मेलन में आम सहमति से तैयार किए गए बयान में कहा गया कि योजना आयोग तथा केन्द्रीय वित्त मंत्रालय की वर्तमान शक्ति जिसके द्वारा वे राज्यों को विभेदकारी अनुदानों को प्रदान करते हैं निर्णायक रूप से कम किया जाना चाहिए।

16.6 इलेक्ट्रोनिक मीडिया का इस्तेमाल

इलेक्ट्रोनिक मीडिया से अभिप्राय है– रेडियो एवं दूरदर्शन। इन दिनों ये दोनों प्रचार एवं प्रसार के शक्तिशाली माध्यम हैं। विश्व भर में सरकारें तथा राजनीतिक दल सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार के राजनीतिक उद्देश्यों के लिए इनका इस्तेमाल करते हैं। भारत में संविधान के अनुसार प्रसारण को नियंत्रित एवं विनियमित करने की वैधानिक शक्तियाँ केन्द्र सरकार के पास हैं। यह आरोप लगाया जाता है कि केन्द्र में जिस दल की सरकार सत्ता में है वह सरकार के द्वारा किए गए कार्यों के आलोचनात्मक अवलोकन को प्रसारित नहीं करती और दूसरी उन राज्यों की सरकारों की छवि को धूमिल करती है जिनमें विरोधी दलों का शासन है। विशेष कर 1980 के दशक में, पक्षपातपूर्ण उद्देश्यों के लिए ऑल इंडिया रेडियो एवं दूरदर्शन का खुला दुरुपयोग किए जाने के विरुद्ध विपक्षी दलों ने कड़ा प्रतिकार किया। यह भी आरोपित किया गया कि मीडिया केन्द्र सरकार के प्रवक्ता के रूप में कार्य करता है।

प्राइवेट चैनलों के आगमन तथा प्रसार भारती की स्थापना ने रेडियो एवं दूरदर्शन को कुछ स्वायत्तता प्रदान की। जिसके कारणवश सरकारी नियंत्रण और मीडिया पर केन्द्र सरकार के एकाधिकार में कमी हुई। संयुक्त सरकारों की स्थिति में जिनके अंदर क्षेत्रीय दलों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है, अब केन्द्रीय सरकार सरकार उनकी अवहेलना नहीं कर सकती। लेकिन इस सबके बावजूद भी मीडिया के लिए विधान बनाने, नियंत्रण एवं विनियमित करने की शक्तियाँ केन्द्र सरकार के पास ही हैं और पक्षपातपूर्ण उद्देश्यों हेतु ऑल इंडिया रेडियो एवं दूरदर्शन के दुरुपयोग की शिकायतें अभी भी बरकरार हैं।

बोध प्रश्न 3

नोट :i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों की जाँच इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से करें

1) अनुदान के मुद्दे पर केन्द्र एवं राज्य सरकारों के बीच टकराव के कौन-से क्षेत्र हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) केन्द्र एवं राज्य के बीच 'योजना' कैसे तनाव का क्षेत्र बन चुका है?

.....

.....

.....

16.7 स्वायत्तता तथा सहयोग की माँग

उपरोक्त किए गए विवरण से यह स्पष्ट है कि केन्द्र एवं राज्यों के बीच तनावों के कई क्षेत्र तथा मुद्दे हैं। भारतीय संविधान निर्माताओं को आशा थी कि भारतीय संघवाद सहमति एवं सहयोग पर आधारित होगा। उन्होंने केन्द्र तथा राज्य सरकारों के बीच शक्तियों के विभाजन को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया था और आशा की थी कि केन्द्र सरकार को प्रदान की गई। आपात शक्तियों का इस्तेमाल मुख्यत: राष्ट्रीय हित में होगा। दुर्भाग्यवश संविधान निर्माताओं की आशाएँ धूमिल हो गईं और केन्द्र-राज्यों के रिश्ते सहयोग की अपेक्षा टकराव की राजनीति में विकसित हुए। प्रारम्भ से ही केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति का आरम्भ हुआ और केन्द्र में सरकारों के बदलने के बावजूद भी यही प्रवृत्ति जारी रही। राज्यों में वंचन की भावनाएँ विकसित होने लगी। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है कि जब तक केन्द्र तथा अधिकतर राज्यों में एक ही दल की सरकारें सत्ता में रहीं तब तक कोई समस्या उत्पन्न न हुई। लेकिन विभिन्न दलों की सरकारों के उद्‌भव, क्षेत्रीय दलों की सफलता, राजनीति में नए समूह एवं वर्गों के प्रवेश और आर्थिक-सामाजिक विकास तथा परिवर्तन से संबंधित जनता की अभिलाषाओं के पूरा न होने पर केवल प्रश्न उठानें की प्रक्रिया शुरू हुई अपितु केन्द्रीय सरकारों के प्रभुत्व और हस्तक्षेप को चुनौती दी जाने लगी।

इसके परिणामस्वरूप बहुत से राज्यों तथा राजनीतिक दलों ने राज्यों को और अधिक शक्तियाँ एवं स्वायत्तता दिए जाने की माँग की। इसी के साथ सरकार को दोनों स्तरों पर तनाव के क्षेत्र समाप्त करने एवं सहयोग बढ़ाने के प्रयास भी होने लगे।

16.7.1 स्वायत्तता की माँग

1967 के चुनाओं में कांग्रेस के आठ राज्यों में सत्ता से हट जाने के तुरन्त बाद गैर-कांग्रेसी सरकारों ने केन्द्र-राज्य के रिश्तों के संदर्भ में संवैधानिक प्रावधानों की गिरती साख के विषय में प्रश्नों को उठाना शुरू कर दिया।

दूसरी ओर केन्द्र में शासन करने वाले दल ने खोयी हुई सत्ता को प्राप्त करने के लिए राज्यपाल के पद और धारा 356 की आपात व्यवस्थाओं का पुन: दुरुपयोग करना प्रारम्भ कर दिया। इसके कारणवश केन्द्रीय सरकार की कड़ी आलोचना की जाने लगी। वास्तव में 1967 से 1972 के बीच के वर्षों में भारतीय संघीय ढाँचे में महत्त्वपूर्ण तनाव देखा गया। कई राज्यों में क्षेत्रीय दलों ने कांग्रेस को हटाकर सत्ता प्राप्त की। विशेषकर इन्हीं राजनीतिक पार्टियों ने कई स्तरों पर केन्द्र-राज्य संबंधों के प्रश्नों को उठाया।

1969 में तमिलनाडू सरकार ने केन्द्र-राज्य संबंधों के प्रश्न की जाँच-पड़ताल करने हेतु राजामन्नार समिति की नियुक्ति की। इस समिति ने अपनी रपट 1971 में पेश की। इस समिति की महत्त्वपूर्ण सिफारिशें थीं कि संविधान की सातवीं सूची को पुनर्व्यवस्थित किया जाए; राज्यों को अवशिष्ट शक्तियाँ हस्तांतरित की जाएँ; धारा 249 को समाप्त, वित्तीय आयोग तथा योजना आयोग में संशोधन और धारा 356 पर पुनर्विचार किया जाए।

दिसम्बर 1977 में पश्चिम बंगाल की वाम पंथ सरकार ने केन्द्र-राज्य संबंधों पर एक स्मरण-पत्र प्रकाशित किया। इस स्मरण-पत्र में ज़ोर देकर कहा गया कि भारत में जाति, धर्म, भाषा तथा संस्कृति के आधार पर भिन्नताएँ विद्यमान हैं और ऐसी स्थिति में राष्ट्रीय एकता को प्राप्त करने के लिए जागरूक स्वैच्छिक प्रयासों के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है और विखण्डनशील प्रवृत्तियों को

रोकने के लिए शक्तियों का विकेन्द्रीकरण आवश्यक है। स्मरण-पत्र में माँग की गई कि संविधान की प्रस्तावना में 'केन्द्र' शब्द के स्थान के स्थान पर 'संघ' का उल्लेख किया जाना चाहिए। इसने यह भी सुझाया कि धाराओं 356, 357 और 360 को समाप्त कर दिया जाना चाहिए। इस स्मरण-पत्र के अनुसार नए राज्यों के गठन और उनकी सीमाओं तथा क्षेत्रों एवं राज्यों के नामों में परिवर्तन करने के लिए अनिवार्य रूप से प्रभावित राज्य की स्वीकृति ली जानी चाहिए।

1978 में अकाली दल ने आनंदपुर साहिब प्रस्ताव को इसके संशोधित रूप में जारी किया यद्यपि इसको 1973 में मौलिक रूप में पारित किया गया था। इस प्रस्ताव के अनुसार केन्द्र की शक्तियाँ केवल रक्षा, विदेश नीति, संचार, रेलवे एवं मुद्रा तक सीमित होनी चाहिए और सम्पूर्ण अवशिष्ट शक्तियाँ राज्यों में निहित हों। 1980 के दशक में क्षेत्रीय राजनीति दलों के महत्त्वपूर्ण हो जाने के कारण राज्य स्वायत्तता की माँग को और प्रखर तरीके से उठाया जाने लगा। क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय दलों ने अलग-अलग तथा सामूहिक रूप में केन्द्र द्वारा राज्यों की शक्तियों का अधिग्रहण करने के विरुद्ध केन्द्र सरकार की कड़ी आलोचना की। इनका कहना था कि शक्तियों के केन्द्रीयकरण और संविधान को विकृत करने की प्रक्रिया राष्ट्रीय एकता के लिए खतरनाक साबित हो सकती है। शक्तियों के विकेन्द्रीकरण और राज्यों को स्वायत्तता प्रदान करने के समर्थकों द्वारा सामान्यत: यह तर्क दिया जाता है कि राष्ट्रीय एकता को बनाए रखने तथा राष्ट्रीय एकीकरण को सुदृढ़ करने वाली प्रक्रियाओं के हेतु देश में विद्यमान बहुस्तरीय भिन्नताओं को स्वीकृत किया जाना चाहिए और क्षेत्रीय स्तर पर विद्यमान इन भिन्नताओं के वास्तविक तथा तर्कसंगत समाधान के लिए स्थानीय पहल तथा स्थानीय क्षमताओं का इस्तेमाल किया जाना चाहिए। यदि इन भिन्नताओं को हल करने का प्रयास केन्द्र द्वारा नियंत्रण करने की दृष्टि से किया जाता है तब इस व्यवस्था में और अधिक तनाव उत्पन्न होगा।

परन्तु कुछ लोगों का मानना है कि भारत की अखण्डता एवं एकता के लिए मजबूत केन्द्र की आवश्यकता है। लेकिन वास्तविकता यह है कि मजबूत केन्द्र तथा शक्तियों का केन्द्रीयकरण दोनों अलग-अलग हैं। भारत तथा विश्व के अन्य भागों में घटनाक्रम से साबित हो चुका है कि केन्द्रीयकरण की प्रक्रिया ने विखण्डन की प्रक्रिया को और अधिक गतिशील ही किया है जबकि विकेन्द्रीकरण के कारण जनता की अभिलाषाएँ एवं आकांक्षाओं को और अधिक उद्देश्यपूर्ण एवं अर्थपूर्ण तरीके से पूरा किए जाने की प्रबल सम्भावनाएँ बनी रहती हैं। सम्पूर्ण विश्व में विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति प्रबल है। भारत में भी विभिन्न समितियों एवं आयोगों की रपटें तथा अध्ययन इस प्रवृत्ति की ओर संकेत करते हैं।

16.7.2 सहयोग की दिशा में किए गए कार्य

1967 के चुनावों के तुरंत बाद ही केन्द्र-राज्यों के रिश्तों में तनाव के बिन्दु उत्पन्न होने लगे। इससे संबंधित पक्षों का शैक्षिक एवं सामाजिक अध्ययन भी प्रारम्भ हो गया और तनाव कम करने एवं सहयोग प्राप्त करने हेतु नीतिगत सुझाव एवं प्रयास किए जाने लगे। व्यापक आलोचना के कारण केन्द्रीय सरकार ने भी इस मामले की जाँच-पड़ताल शुरू की। इसका प्रारम्भ करते हुए प्रशासनिक सुधार आयोग (1967 में नियुक्त किया गया) से कहा गया कि वह केन्द्र-राज्य के प्रशासनिक रिश्तों का भी अध्ययन करे। आयोग ने अपनी सिफारिशों में कहा कि राज्यों को अधिकतम प्रशासनिक शक्तियाँ प्रदान की जाएँ। इसने मत अभिव्यक्त करते हुए कहा कि केन्द्रीकृत योजना राज्यों की नीतियों तथा कार्यक्रमों के लिए कार्य करने में उनकी स्वतंत्रता में बहुत अधिक हस्तक्षेप करने की और प्रदत्त है। आयोग ने राज्यपाल के पद हेतु भी कुछ सिफारिशें कीं और संविधान की धारा 263 के अंतर्गत अन्तर-राज्य परिषद् गठित करने की आवश्यकता का सुझाव भी दिया।

परन्तु इस आयोग की सिफारिशें लागू न की जा सकीं और केन्द्रीयकरण की प्रक्रिया जारी रही। 1971-72 में कांग्रेस के अधिकतर राज्यों में पुन: वापस सत्ता में आ जाने से केन्द्र के नियंत्रण को थोपे जाने की प्रक्रिया ने नवीन ऊँचाइयों को प्राप्त किया। यह कहा जाने लगा कि राज्यों का दर्जा गरिमा प्राप्त नगरपालिकाओं के समरूप हो गया। मुख्यमन्त्रियों को केन्द्र की ओर से थोपा जाने लगा। उनको अपने साथियों का चुनाव करने की कोई आज़ादी प्राप्त न थी। ग़ैर-कांग्रेस शासित राज्यों की केन्द्र द्वारा पार्टी तथा सरकार दोनों के स्तर पर आलोचना जारी थी।

जनता पार्टी के संक्षिप्त शासन के दौरान (1977-79) यद्यपि केन्द्रीय सरकार मौखिक रूप से विकेन्द्रीकरण की नीति के प्रति प्रतिबद्ध थी किन्तु उनको भी अपने तरीके से चलने दिया जाता। तब वे भी केन्द्रीयकृत शासन का अनुसरण करते। विशेषकर 1980 के दशक में संघवाद का प्रश्न राष्ट्रीय एजेण्डे के रूप में ज्वलंत रूप से उभरकर सामने आया। जब केन्द्र तथा राज्यों के मध्य राजनीतिक चुनौतियों ने नवीन प्रकार के आयामों तथा तनावों का रूप ग्रहण कर लिया तब स्थिति को किसी भी प्रकार से सामान्य करना आवश्यक हो गया। भारत सरकार ने 24 मार्च, 1983 को केन्द्र-राज्यों के बीच विद्यमान कार्य पद्धति का निरीक्षण तथा पुनर्विचार करने और सभी क्षेत्रों में शक्तियों के कार्य करने तथा उत्तरदायित्वों के संदर्भ में उचित परिवर्तनों एवं उपायों का सुझाव देने हेतु एक आयोग का गठन किया। इस आयोग का अध्यक्ष सेवानिवृत्त न्यायाधीश आर० एस० सरकारिया को नियुक्त किया गया जिससे इसको केन्द्र-राज्य संबंधों पर सरकारिया आयोग के नाम से जाना गया।

16.7.3 सरकारिया आयोग

सरकारिया आयोग से कहा गया कि केन्द्र-राज्यों के बीच विद्यमान व्यवस्थाओं पर पुनर्विचार वह उस सामाजिक-आर्थिक बदलाव को ध्यान में रखकर करे जो पिछले वर्षों में हुआ है। उसको संविधान की योजना तथा ढाँचे और देश की एकता एवं अखण्डता की आवश्यकता को भी ध्यान में रखते हुए करना है। आयोग ने बहुत-सी राज्य सरकारों, राजनीतिक दलों एवं रुचि रखने वाले तथा संबंधित पक्षों से विचार-विमर्श करने के बाद 27 अक्टूबर, 1987 को अपनी रपट प्रस्तुत की।

राजनीति के क्षेत्र में प्रबल विखण्डित प्रवृत्तियों की प्रधानता हो जाने के कारण सरकारिया आयोग ने अपनी रपट में इसको राष्ट्रीय एकता के लिए एक गहरा खतरा माना और राष्ट्रीय अखण्डता की सुरक्षा हेतु एक मज़बूत केन्द्र का पक्ष लिया। लेकिन आयोग ने केन्द्रीयकरण को मज़बूत केन्द्र के समरूप नहीं समझा। वास्तव में उसने केन्द्रीयकरण को राष्ट्र की अखण्डता के लिए एक ख़तरा बताया। आयोग ने कहा, "बहुत बार केन्द्र की कार्यवाहियों, कुछ राज्यों के प्रति इसकी भेदभाव पूर्ण नीति, स्थानीय समस्याओं को समझ पाने में असमर्थता, घृणित भावनाएँ और राज्यों के प्रति सत्ता का खुला दुरुपयोग जैसे कार्यों ने इसको जनता से दूर किया।" इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय अखण्डता की प्रक्रिया विपरीत दिशा में चलने लगी और इस प्रकार के अदूरदर्शितापूर्ण दृष्टिकोण ने विभाजक प्रवृत्तियों को और मज़बूत किया।

सरकारिया आयोग की सिफारिशों का मुख्य आधार था कि विद्यमान संवैधानिक सिद्धांत तथा व्यवस्थाएँ सुदृढ़ हों और इसके लिए आवश्यक है कि सामूहिक निर्णय की व्यवस्था को सुनिश्चित करने हेतु एक प्रणाली बनायी जाए। ये सिफारिशें मात्र प्रशासन से संबंधित थीं न कि राज्य-केन्द्र रिश्तों की राजनीति से। इसने 265 सिफारिशों को अनुमोदित किया जिनका 20 क्षेत्रों के अधीन वर्गीकरण किया गया है। भारतीय राजनीति को संघीय सिद्धांतों के अनुरूप विकसित होने देने के लिए इसने संविधान में संशोधनों पर भी बल दिया।

इसकी महत्त्वपूर्ण सिफारिशें राज्यपाल की नियुक्ति तथा कार्य करने, धारा 356 के प्रयोग और आर्थिक संसाधनों के विभाजन से संबंधित हैं। आयोग ने सिफारिश की है कि राज्य के राज्यपाल पद पर सत्यनिष्ठ लोगों को ही नियुक्त किया जाना चाहिए। उसके पद त्यागने के पश्चात् उसकी नियुक्ति किसी दूसरे पद या लाभ वाले पद पर न की जाए। धारा 356 का प्रयोग एक अंतिम उपाय के रूप में उन विशिष्ट परिस्थितियों में किया जाना चाहिए जब सभी उपलब्ध विकल्प असफल हो जाएँ। धारा 356 में ऐसे सुरक्षा उपायों को शामिल किया जाए जिनके अनुसार राष्ट्रपति शासन के जारी रहने के विषय में संसद पुनर्विचार कर सकने में सक्षम हो।

आयोग ने कर एवं शुल्कों के लगाने के लिए कार्य करने के व्यवहारिक क्षेत्र, केन्द्र एवं राज्यों के बीच कॉरपोरेट कर के विभाजन हेतु संवैधानिक संशोधन, कर प्रणाली में सुधार और केन्द्र तथा राज्यों के बीच संसाधनों को गतिशील करने की क्षमता पर विचार करने जैसी सिफारिशों पर पुनर्विचार करने के लिए कहा। इसने यह भी सुझाया कि अंतर-राज्य नदी विवाद अधिनियम में इस प्रकार का संशोधन किया जाए कि किसी भी राज्य से आवेदन-पत्र प्राप्त होने के एक वर्ष के अंदर केन्द्र के लिए एक न्यायाधिकरण का गठन करना अनिवार्य हो और इस न्यायाधिकरण के निर्णय को पाँच वर्ष के अंदर लागू कर दिया जाना चाहिए।

आयोग ने सिफारिश की कि योजना प्रक्रिया के सभी स्तरों पर राज्यों के साथ प्रभावकारी सलाह करने के उद्देश्य से योजना आयोग और राष्ट्रीय विकास परिषद् में सुधार किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय विकास परिषद् का पुनर्गठन करते हुए उसका राष्ट्रीय आर्थिक विकास परिषद् नाम रखा जाए। इसको और अधिक प्रभावकारी ढंग से कार्य करने वाला बनाया जाना चाहिए और देश के योजनाबद्ध विकास को दिशा प्रदान करने तथा महत्त्वपूर्ण बनाने हेतु उच्चतम राजनीतिक स्तर की एक अंतर-सरकारी संस्था के रूप में इसका उद्भव हो। संविधान की धारा 263 के अंतर्गत एक स्थायी अंतर-राज्य परिषद् गठित करने की सिफारिश भी इस आयोग ने की जिससे कि यह केन्द्र-राज्य की सामूहिक समस्याओं पर बहस करने के एक मंच के रूप में यह कार्य करे। केन्द्र में संविद सरकार में क्षेत्रीय दलों की महत्त्वपूर्ण भूमिका के कारण निश्चय ही राज्यों के मामलों में केन्द्रीय सरकार हस्तक्षेप करने के लिए शक्तिशाली नहीं रह गई है। इसी के साथ राष्ट्रपति तथा न्यायपालिका की सक्रिय भूमिका ने केन्द्र की भेदपूर्ण नीति पर किसी सीमा तक रोक लगाने में सफलता प्राप्त की है। परन्तु अभी तक भी कोई संवैधानिक तथा ढाँचागत परिवर्तन नहीं किया गया है। कुलमिलाकर संघीय ढाँचा भारी दबाव के अधीन बना हुआ है।

16.7.4 अन्तर-राज्य कौंसिल

उपरोक्त विवेचना से यह निष्कर्ष निकलता है कि सरकार के दो स्तरों पर मतभेद तथा तनाव उत्पन्न होने की संभावनाओं संघीय व्यवस्था में अंतर्निहित हैं। इन दोनों के मध्य सहयोग सुनिश्चित करने के लिए संवैधानिक उपायों सहित अन्य बहुत-सी प्रणालियाँ हो सकती हैं। इस प्रकार की प्रणालियाँ भारतीय संविधान द्वारा धारा 263 के अंतर्गत एक अंतर-राज्य परिषद् की व्यवस्था के माध्यम से उपलब्ध करायी गई है। केन्द्रीय सरकार ने कई वर्षों तक इस प्रकार की परिषदों का गठन नहीं किया। प्रशासनिक सुधार आयोग ने 1969 में जमा की गई। अपनी रपट में अंतर-राज्य परिषद् के गठन की सरकार ने इस चेतावनी की कोई परवाह नहीं की।

सरकारिया आयोग के सम्मुख बहुत से राज्यों ने इस प्रकार की परिषद् की नियुक्ति ने करने की महत्त्वपूर्ण शिकायत की। सरकारिया आयोग ने अपनी रपट में सिफारिश की कि धारा 263 के खण्ड (ब) तथा (स) में उल्लेखित कर्त्तव्यों से लैस अंतर-राज्य परिषद् का गठन किया जाना चाहिए। आयोग का मानना था कि धारा 263 के अंतर्गत परिषद् के गठन तथा विशेष प्रश्नों को हल करने

हेतु परिषद् को दिए जाने वाले अधिकार देने के राष्ट्रपति के बार-बार आदेश लेने की प्रक्रिया से आवश्यक रूप से बचा जाना चाहिए। फिर भी केन्द्रीय सरकार ने सामान्यत: सरकारिया आयोग की सिफारिशों के प्रति निरुत्साह ही प्रदर्शित किया है। इसलिए इस प्रकार की परिषद् के गठन के लिए कोई प्रयास नहीं किया गया।

1989 के चुनाव से पूर्व गठित राष्ट्रीय मोर्चे ने अपने चुनाव घोषणा-पत्र में वायदा किया था कि वह सभी मुख्यमंत्रियों की सलाह से केन्द्र-राज्य संबंधों के विषय में व्यापक रूप से विचार-विमर्श किया जाएगा। इस वायदे को पूरा करने की दिशा में राष्ट्रीय मोर्चे की सरकार ने 25 मई, 1990 को अंतर-राज्य परिषद् के गठन हेतु राष्ट्रपति की अधिसूचना जारी की। प्रधानमंत्री, सभी राज्यों के मुख्यमंत्री एवं प्रशासक और केन्द्रीय सरकार के कैबनेट स्तर के छ: मंत्री इस परिषद् के सदस्य बनाए गए। प्रधानमंत्री इस परिषद् के अध्यक्ष बने और उनकी अनुपस्थिति में उनके द्वारा नामजद किया गया। मंत्रीमण्डल का सदस्य अध्यक्ष का पद सँभालेगा। परिषद् ने इसके सम्मुख रखे जाने वाले मुद्दों के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत तैयार किए। इसकी एक वर्ष में तीन बार बैठक हुई। इसकी बैठकें "इन कमेरा" में हुई। इसने आम सहमति से निर्णय किए जो अन्तिम एवं बाध्यकारी थे। परिषद् ने अपनी प्रभावकारी कार्यशीलता के लिए कुछ केन्द्रीय मंत्रियों एवं मुख्यमंत्रियों की एक उप-समिति का गठन किया।

यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि अन्तर-राज्य परिषद् का गठन केन्द्र-राज्य रिश्तों में सहयोग की ओर एक महत्त्वपूर्ण कदम था। लेकिन यह एक वास्तविकता है कि भारत अभी तक भी एक उच्च स्तरीय केन्द्रीकृत राज्य व्यवस्था बना हुआ है। राज्यपाल की नियुक्ति और राष्ट्रपति शासन को लागू करने से लेकर केन्द्रीय सूची या समवर्ती सूची सहित ऐसे बहुत से विषय हैं जिनके कारण यह मूलत: एक केन्द्रीकृत ढाँचा है। जैसा कि पहले भी उद्धृत किया गया है कि क्षेत्रीय दलों के महत्त्वपूर्ण हो जाने तथा उनके द्वारा केन्द्र में संविद सरकार बनवाने एवं जारी रखने में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका हो जाने के कारण और क्षेत्रीय आंदोलनों की बढ़ोतरी होने से केन्द्र द्वारा राज्यों के मामलों में हस्तक्षेप करने तथा स्वयं को थोपने की उसकी प्रवृत्ति में कुछ कमी आयी है। केन्द्र-राज्यों के रिश्तों को और अधिक सौहार्दपूर्ण बनाए रखने के लिए बहुत से दलों तथा राज्यों द्वारा संविधान में आवश्यक संशोधन की माँग लगातार की जाती रही है। बहुत से समुदायों, समूहों तथा क्षेत्रों की अभिलाषाओं को पूरा करने, जनता को केन्द्र, बिन्दु बनाकर विकास करना और राष्ट्रीय हितों के लिए संघीय भावना को स्वीकार करना तथा आवश्यक परम्पराओं को बनाए रखना कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है।

बोध प्रश्न 4

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों की जाँच इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से करें।

1) राज्य अपने लिए स्वायत्तता की माँग क्यों करते हैं?

.....

.....

.....

.....

2) केन्द्र-राज्य संबंधों में सुधार के लिए किए गए कुछ उपाय बताएँ।

.....

.....

.....

.....

.....

3) सरकारिया आयोग की नियुक्ति क्यों की गई और इसकी क्या महत्त्वपूर्ण सिफारिशें थीं?

.....

.....

.....

.....

.....

4) अन्तर-राज्य परिषद् की क्या भूमिका एवं उपयोगिता है?

.....

.....

.....

.....

.....

16.8 सारांश

इस इकाई में आपने भारत में संघवाद की कार्य पद्धति का अध्ययन किया है। जबकि संविधान निर्माताओं ने आशा की थी कि सहयोगात्मक संघीय ढाँचे का विकास होगा, लेकिन केन्द्र सरकार ने प्रारंभ से ही संघवाद को एक शक्तिशाली केन्द्र के रूप में लिया। इससे भी अधिक केन्द्र को जो आपातकालीन स्थिति के लिए शक्तियाँ प्रदान की गई थीं उनका संकुचित उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल किया गया। जब 1960 के दशक के मध्य में केन्द्र तथा अधिकतर राज्यों में सत्ता पर एक दल का एकाधिकार समाप्त हो गया तब केन्द्र सरकार के हस्तक्षेप तथा सत्ता के उपयोग एवं दुरुपयोग पर प्रश्न उठाए जाने लगे। इससे केन्द्र-राज्य संबंधों में खिंचाव एवं तनाव बढ़ने लगा, क्षेत्रीय आंदोलनों का उद्गम हुआ और विकेन्द्रीकरण तथा स्वायत्तता की माँग की जाने लगी। कई प्रकार के सुझाव दिए गए और प्रशासनिक सुधार आयोग ने कार्य पद्धति में सुधार के साथ-साथ संविधान में परिवर्तन

का सुझाव दिया। परन्तु केन्द्र सरकार ने इन सुझावों की ओर कोई विशेष ध्यान न दिया और केन्द्रीकरण की प्रक्रिया जारी रही। परिणामस्वरूप तनाव बना रहा। 1980 के दशक में स्थिति गंभीर प्रतीत होने लगी। फिर 1983 में केन्द्रीय सरकार ने केन्द्र-राज्य संबंधों पर नए ढंग से पुनर्विचार करने एवं आवश्यक सिफारिशें करने के लिए न्यायाधीश आर०एस० सरकारिया आयोग का गठन किया। सरकारिया आयोग ने राज्यपाल की नियुक्ति, धारा 356 के अंतर्गत आपात व्यवस्थाओं के प्रयोग, वित्तीय संसाधनों के वितरण तथा संविधान की धारा 263 द्वारा अंतर-राज्य परिषद् की स्थापना सहित जैसे अन्य दूसरे उपायों के विषय में महत्त्वपूर्ण सिफारिशें कीं। सरकारिया आयोग द्वारा की गई अधिकतर सिफारिशों को लागू ही नहीं किया गया। फिर भी केन्द्रीय सरकार ने 1990 में अंतर-राज्य परिषद् का गठन किया। यह अभी भी कार्यरत है और संबंधों को सामान्य बनाने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है। क्षेत्रीय दलों के महत्त्व प्राप्त करने तथा इनके द्वारा केन्द्र में संविद सरकार में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करने के कारण केन्द्र द्वारा राज्यों के मामलों में हस्तक्षेप करने तथा अपनी इच्छा को उन पर थोपने की प्रवृत्ति में कमी आयी है। केन्द्र-राज्यों के बीच सहयोग के लिए संवैधानिक परिवर्तन एवं स्वस्थ परम्पराओं को विकसित करने की आवश्यकता को फिर भी महसूस किया जा रहा है।

16.9 शब्दावली

कॉरपोरेशन कर : कम्पनियों की आमदनी पर कर लगाना।

वित्त आयोग : केन्द्र एवं राज्यों के बीच राजस्व वितरण हेतु मापदण्ड निर्धारित करने के लिए राष्ट्रपति प्रत्येक पाँच वर्ष में या इससे पूर्व एक वैधानिक आयोग की नियुक्ति करता है।

विखण्डन की प्रवृत्तियाँ : बिखराव या अलगाव की प्रवृत्तियाँ

स्वायत्तता : किसी दूसरे के हस्तक्षेप के बग़ैर व्यक्ति विशेष, संस्था, राज्य का देश के अधिकार क्षेत्र में विषयों और मामलों में स्वतंत्र निर्णय लेना।

16.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अब्दुल रहीम पी० विज़पुर (सम्पादक), *डाइमेन्शन ऑव फेडरल नेशन बिल्डिंग*, नई दिल्ली, 1998

ए० एस० नारंग, *इण्डियन गवरमेण्ट एण्ड पॉलीटिक्स*, नई दिल्ली, गीतांजली, 2000

16.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आप अपने उत्तर में निम्नलिखित तर्कों को शामिल करें:

   अ) राज्यों में कांग्रेस के एकाधिकार शासन का अंत।

ब) अपेक्षित परिणामों को प्राप्त करने में योजना आयोग की असफलता ।

स) राजनीति में नवीन समूहों एवं वर्गों का उद्‌भव।

2) अ) बहुमत पर संदेह होने की स्थिति में केन्द्र द्वारा मुख्यमंत्री की नियुक्ति एवं बर्खास्तगी पर विवाद।

ब) राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए विधेयकों को सुरक्षित रखने हेतु भेदभाव पूर्ण शक्तियों का इस्तेमाल।

स) सरकार के रोज़मर्रा प्रशासन में हस्तक्षेप।

द) धारा 356 के अंतर्गत आपातस्थिति घोषणा हेतु राष्ट्रपति को रपट भेजना।

बोध प्रश्न 2

1) धारा 356 के अंतर्गत शक्तियों का दुरुपयोग किया गया है :

अ) द्वेषपूर्ण आधार पर राज्य सरकार को बर्खास्त करना

ब) सरकार का गठन करने के लिए विरोधी दलों को अवसर देने से इंकार करना

स) दल के आंतरिक विवादों को हल करना

द) उन राजनीति दलों या सरकारों को तंग करना जिनको केन्द्र सरकार द्वारा पसंद न किया जाता हो

2) अ) राष्ट्रपति शासन की घोषण के लिए कारणों को सार्वजनिक रूप से बताना

ब) राज्य विधान सभा को तब तक भंग न किया जाए जब तक इस घोषणा का अनुमोदन संसद नहीं कर देती

स) घोषणा पर पुनर्विचार करने की शक्ति न्यायपालिका के पास होनी चाहिए

द) धारा में विद्यमान व्यवस्थाओं पर अंकुश लगाने के लिए संविधान में संशोधन किया जाए

बोध प्रश्न 3

1) अ) केन्द्र के राजस्व स्रोत राज्यों की अपेक्षा कहीं अधिक व्यापक एवं खर्चीले हैं

ब) द्वेषपूर्ण आधार पर राज्यों को अनुदान देना

स) वित्तीय आयोग की शक्तियों के एक भाग का अधिग्रहण योजना आयोग द्वारा करना

2) अ) राज्यों की आवश्यकताओं तथा ज़रूरतों की परवाह किए बग़ैर केन्द्र द्वारा अपनी योजना एवं कार्यक्रमों को थोपना;

ब) केन्द्र द्वारा इसका इस्तेमाल राज्य के विषयों में कया गया है;

स) यह केन्द्र को अनुदान प्रदान करने की व्यापक शक्तियाँ प्रदान करता है।

बोध प्रश्न 4

1) उप-भाग 16.7.1 को देखें।

2) अ) अंतर-राज्य परिषद् की स्थापना

ब) संविधान में आवश्यक संशोधन करना

स) राज्यपालों की नियुक्तियाँ, धारा 356 के इस्तेमाल तथा भेदभाव, शक्तियों के प्रयोग के संदर्भ में स्वस्थ परम्पराओं को विकसित करना

द) शक्तियों का विकेन्द्रीकरण।

3) अ) सामाजिक-आर्थिक तथा राजनीतिक परिवर्तनों की पृ ठभूमि में केन्द्र-राज्यों के रिश्तों पर पुनर्विचार करने हेतु सरकारिया आयोग का गठन किया गया।

ब) बहुत से क्षेत्रों में सुधार के लिए आयोग ने 265 सिफारिशों की इसके लिए उप-भाग 16.7.3 को देखें।

4) अ) केन्द्र और राज्यों के बीच मतभेद तथा सहयोग के बहुत से मामलों पर विचार-विमर्श के लिए संविधान की धारा 263 अंतर-राज्य परिषद् के गठन की व्यवस्था की गई।

ब) बहुत से मामलों पर विचार-विमर्श करने और राज्य तथा केन्द्र के बीच सहमति प्राप्त करने के लिए परिषद् एक उपयोगी मंच है;

स) विवादों को हल तथा सहयोग को प्राप्त करने के लिए यह एक सतत् प्रक्रिया को उपलब्ध कराता है।